HISTORY

B.A.PART-I (Hons)

Paper-II (The Rise of Modern west)

Unit-IV, (ECONOMIC DEVELOPMENT IN 16TH CENTURY IN EUROPE)

Dr. GUDDY KUMARI

(Guest Lecturer), History Deptt.

A.N.D. College, Samastipur

Lecture Series - 82

यूरोप में सोलहवीं शताब्दी में आर्थिक विकास

(ECONOMIC DEVELOPMENT IN 16TH CENTURY IN EUROPE)

रोमन साम्राज्य के पतन के बाद यूरोपीय अर्थव्यवस्था में व्यापक परिवर्तन हुए। यहाँ की आर्थिक व्यवस्था में कृषि का विकास देखने को मिलने लगा। कृषि के साथ-साथ व्यापार एवं वाणिज्य व्यवस्था भी परिवर्तित होने लगी। 16 वीं शताब्दी में यूरोपीय अर्थव्यवस्था में जिन क्षेत्रों में परिवर्तन एवं विकास हुआ उनका वर्णन इस प्रकार है

1. कृषि-

सोलहवीं सदी में यूरोप का समाज कृषि प्रधान था। भूमि के स्वामित्व से सामाजिक प्रतिष्ठा का मूल्यांकन किया जाता था। सम्पूर्ण यूरोप के ग्रामीण जनपदों में समरूपता थी। कोई जर्मनी, हंगरी, पोलैण्ड, फ्रांस अथवा इंग्लैण्ड की यात्रा करता तो यही पाता कि वहाँ का कृषि-समाज दो वर्गों-कुलीन एवं किसान में विभाजित है। कुलीनों के पास काफी जमीन थी। कुलीन वर्ग को ही सामंत कहा जाता था। वे स्वतः खेतों में कार्य नहीं करते थे। हर कुलीन की एक जागीर होती थी जिसको इंग्लैण्ड में मेनर कहते हैं। उसी जागीर में उसका महल एवं किसानों की झोपड़ियाँ होती थीं। उसके अस्तबल में घोड़े होते थे। नौकर उसकी सेवा में हाजिर रहते थे।

सोलहवीं सदी से सामन्तवाद का पतन शुरू हो गया। राष्ट्रीय राज्यों में राजा अपनी प्रजा का रक्षक बन गया। वह अपने राज्य में शान्ति-व्यवस्था बनाए रखने लगा। कुलीनों को निरस्त कर दिया गया तथा एवं उनके राजनीतिक अधिकारों को छीन लिया गया। अब सामन्त समाज के जरूरी अंग नहीं रह गए। वे मात्र राजदरबार के श्रृंगार के रूप में थे।

मध्यकाल के आरम्भिक समय में सम्पूर्ण यूरोप में किसान कृषि दास के रूप में थे। पश्चिमी यूरोप में विभिन्न कारणों से कृषि दास परम्परा का अन्त शुरू हो गया। फिर भी, सोलहवीं व सत्रहवीं सदी में प्रशा, हंगरी, पोलैण्ड, रूस, फ्रांस और स्पेन में कृषि दास परम्परा बनी रही। ग्रामीण समाज में कृषिदास की दशा विचारणीय थी।

धर्मयुद्ध, गृहयुद्धों, राष्ट्रीय राज्यों के उत्कर्ष, महामारियों इत्यादि के परिणामस्वरूप उत्तरकालीन मध्यकाल में पश्चिमी यूरोप में कृषि में बदलाव के संकेत स्पष्ट परिलक्षित होने लगे। यह पूँजीवादी कृषि थी। सामन्त कृषि को एक उद्योग के रूप में देखने लगे। परम्परागत तरीके से कृषि करने के तरीके बदल दिए गए। सामन्त अपनी जागीर से मात्र अपना जीवन-निर्वाह ही नहीं चाहने लगे बल्कि वे इससे लाभ भी कमाने की बात सोचने लगे। अब उनकी जागीर एक पूंजीवादी उद्यम बन गई। परिणामत: अब कृषिदास उन्मुक्त होने लगे। वे स्वतन्त्र किसान,रहानधारी या भाड़ेदार मजदूर बन गए। इंग्लैण्ड में घेराबन्दी परम्परा से भी कृषिदास परम्परा का अंत हुआ। वहा के जमींदार अपनी-अपनी जागीर का घेराव करने लगे। अब उन घिरे हए मैदानों में खेती नहीं की जाने लगी अपितु भेड़ पालन का कार्य होने लगा। भेड़ पालन के लिए कम व्यक्तियों की आवश्यकता होती थी, फलत: जागीरों में कार्य करने वाले बहुत-से कृषि दास बेकार हो गए। इस तरह इंग्लैण्ड में तो सोलहवीं सदी के पहले ही कृषिदास परम्परा का उन्मूलन हो गया था। फ्रांस में तो चौदहवीं सदी में ही बहुत से कृषि दासों ने अपने सामन्तों को धन देकर अपने को आजाद कर लिया था।

मध्यकालीन यूरोप की प्राय: 90% जनता आजीविका हेतु कृषि पर निर्भर थी। सर्दी-धूप-बारिस की चिन्ता किए बिना किसानों को सुबह से शाम तक कार्य करना पड़ता था। रोटी, मांस एवं चमड़ा जिनकी जरूरत सारे यूरोप को होती थी, गाँव से ही आया करते थे। मुद्रा की कमी के कारण सम्पत्ति का आकलन भूमि, पशु तथा कृषि दासों के ही आधार पर होता था। सम्पूर्ण समाज के लिए खून-पसीना एक करने के बाद भी किसान सबकी दृष्टि में अधिक गन्दा, पशुवत व कुत्सित प्राणी था।

सामंतों को कृषि-व्यवस्था अच्छी करने में विशेष अभिरुचि नहीं थी। लेकिन कुछ मठवासी कृषि-प्रणाली सुधारने के लिए सचेष्ट थे। उन्होंने जंगल-झाड़ साफ कर बड़े कृषि क्षेत्रा को स्थापित किया था। ये नवीन फार्म मेनरों से सर्वथा अलग थे। इनका संचालन, केन्द्रीभूत ठोस एवं लाभ के सिद्धान्त पर आधारित था। मठों की तरह मेनरों व गांवों से निकले हुए व्यक्तियों ने भी जंगल-झाड़ तथा दलदलों को सही करके कृषि करने योग्य बनाया। इस प्रकार विभिन्न नवीन बस्तियाँ तथा कृषि क्षेत्र स्थापित किए गए। वाणिज्य व्यवसाय में प्रगति, नगर की स्थापना और लोगों की बढ़ती हुई जरूरतों के कारण एक तरफ मुद्रा में बढ़ोत्तरी हुई तो दूसरी तरफ दाम भी बढ़ते गए। इसका भी किसानों को पूर्ण लाभ हुआ।

2. नगरों का विकास---

रोमन साम्राज्य के उदय के समय पश्चिमी यूरोप में नगरी सभ्यता विशेष रूप से विकासत हुई थी। इस साम्राज्य में विभिन्न शहर व कस्बे थे। रोम इनमें सबसे श्रेष्ठ था। वाणिज्य-व्यवसाय की जरूरतों ने कई नगरों को जन्म दिया। अच्छे बंदरगाह, जहाज अथवा नौका चलाने योग्य नदियों और प्रमुख सड़कों को जोड़ने वाले स्थानों पर नए नगर सहज ही उठ खड़े हुए। इतालवी नगर राज्यों में वेनिस और जिनेवा प्रमुख थे। फ्लोरेन्स उद्योग, साहित्य एवं कला का केन्द्र था।

मध्यकालीन नगर छोटे तथा सघन थे। वे साधारणत: प्राचीन, गढ़-खाई, बाँध, लकड़ी के बाड़े से घिरे रहते थे। जनसंख्या बढ़ने पर नगर के बाग-बगीचे कम होते गये। उनकी जगह घनी बस्तियाँ बस गई। मकान पत्थर, लकड़ी, शाखा-टहनी अथवा किसी भी उपलब्ध वस्तु के होते थे।

नगर मध्यकालीन यूरोप के औद्योगिक जीवन के केन्द्र थे। नगरों का औद्योगिक जीवन श्रमिक निकायों पर आधारित था। ये श्रमिक निकाय दो प्रकार के थे-श्रेष्ठ निकाय अथवा शिल्प श्रेणी श्रेष्ठी। इनके सदस्य नगर के भू-स्वामी एवं व्यवसायी थे। कई नगरों में श्रेष्ठी निकाय नगर प्रशासन के उद्योग एवं व्यवसाय विभाग के समान थे।

3. व्यापार-व्यवसाय--

मध्यकालीन यूरोप के व्यापारी घुमन्तू व्यक्ति थे। ये जल या थलमार्ग पर गिरोह बनाकर चलते थे। व्यापारी वर्ग के पास पूंजी का अभाव था। अत:, प्राय: उसे उधार लेकर काम चलाना पड़ता था। व्यापारियों पर नियमित रूप से कोई कर नहीं लगता था। सामन्त व्यक्ति दलालों और अन्य व्यापारियों से कुछ सामन्ती कर वसूला करते थे। व्यापारी वर्ग में सामान्य लोगों के अलावा कुछ सामन्त, पादरी तथा राजघरानों के लोग भी सम्मिलित थे।

गरम मसाला यूरोप के अंतरराष्ट्रीय व्यापार की एक प्रमुख वस्तु थी। पश्चिम भूमध्य सागर के विभिन्न बन्दरगाह इससे अधिक लाभ कमाते थे। अरब, भारत तथा चीन से मसाले सीरिया पहुँचाये जाते हैं, उनकी कीमत भी अधिक मिलती थी। बन्दरगाहों में उपलब्ध यांत्रिक उपकरण, गोलमिर्च, लौंग, गन्ना एवं दालचीनी इत्यादि हल्की वस्तु को ही रख व उतार सकते थे। इन वस्तुओं की यूरोप में खपत भी पर्याप्त थी।

यूरोपीय नगर उद्योग के प्रमुख केन्द्र थे। हर छोटे-बड़े नगर में शिल्पी नगर की जरूरतों की पूर्ति और निर्यात की नियमित वस्तुओं को बनाते थे। विलासिता के उपकरण बनाने वाले कारीगर सभी नगरों में नहीं थे, लेकिन दैनिक जरूरतों को पूरा करने वाले शिल्पी, जैसे-कसाई, दर्जी, बढ़ई, सुनार, कुम्हार, लुहार इत्यादि प्रायः प्रत्येक नगर में उपलब्ध थे।

औद्योगिक कानून खाद्यान्नों के कानून से कहीं ज्यादा संकुल थे। इनके द्वारा उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं के हितों की समान रूप से रक्षा करने की चेष्टा की गई थी।

नगर उद्योगों का स्वरूप सब जगह एक समान नहीं था। अधिक विकसित नगरों में स्थानीय जरूरतो को पूरा करने वाले शिल्पियों के अलावा बहुत अधिक संख्या में ऐसे कारीगर भी थे जो मात्र निर्यात के निमित्त ही सामान बनाते थे। ये लोग अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार करने वाले व्यापारियों से कच्चा माल लेकर उसे तैयार माल से बदलकर उन्हें सौंप देते थे। इस तरह के अनेक लोग रेशम, ताँबा, बुनाई तथा रंगाई के कार्य में लगे हुए थे। अधिकतर लोग वस्त्र-उद्योग से सम्बद्ध थे। बड़े औद्योगिक नगरों के कामगारों को कभी-कभी संकटो एवं कार्य-निषेध का सामना करना पड़ता था।

4.बैंक--

मुद्रा का रोमन साम्राज्य में प्रचलन था तथा उस साम्राज्य में पतन के पश्चात् भी यूरोप में मुद्रा का प्रयोग होता रहा। लेकिन मध्यकाल में इसका प्रयोग अधिक सीमित हो गया। केवल चांदी एवं सोने के मुद्राओं का ही प्रचलन रहा। चर्च ऋण देने में सबसे आगे था। व्यावसायिक ऋण भी प्रचलन में थे। गरम मसाला, शराब, ऊन, वस्त्र इत्यादि का क्रय-विक्रय उधार होने लगा। वेनिस, जिनेवा एवं पिसा के बहुत-से व्यापारी सामुद्रिक व्यापार में अपनी पुंजी लगाने लगे। हुंडी का प्रयोग भी अब व्यापक रूप से होने लगा। व्यापारीगण नियमित रूप से बहीखाता रखने लगे थे। बैंक-व्यवसाय का प्रमुख पक्ष उधार देना ही था। इस कार्य में बड़े-बड़े महाजन लगे थे। राजा, सामन्त एवं पादरी तक इन साहूकारों से उधार धन लेते थे। साधारण: एक वर्ष बाद ऋण की वापसी होती थी। ऋण लेते वक्त प्रतिष्ठित व्यक्तियों की जमानत देनी पड़ती थी या बंधक के रूप में भूमि रखनी पड़ती थी। प्राय: सामंतों के समान नगरवासी भी ऋण लेते रहते थे। धार्मिक संस्थान भी कर्ज लेते थे। ब्याज की दर 10 से 15% होती थी, यद्यपि कभी-कभी 5 से 24% तक भी ब्याज लिया जाता था।

धन्यवाद